In Praise of the Infinite: Interview with Asad Ali Khan

Ustad Asad Ali Khan playing Rudra Veena in 2009 Wikipedia Domain

Asad Ali Khan (1937–2011), born in Alwar and shaped by the Jaipur lineage, stands among the most luminous voices of Hindustani classical music. Revered as Khansaab, he represented the epitome of sādhanā and discipline in Rudra Veena. Across the world, his playing carried a rare integrity, leaving behind a legacy that still feels austere and unmistakably alive.

The interview presented in these pages was conducted on 24 January 2010 at Khansaab's home in New Delhi by Ananya Chaturvedi, Taruna Kumari, and Raghav. Sixteen years later, Anveshanā is honoured to offer this conversation to its readers, as a gesture of respect to an enduring legacy and to the quiet purity with which Khansaab lived and made music. The interview was originally in Hindi but an English translation is presented alongside for a wider audience.

रुद्र वीणा आपके लिए क्या है और आपने इसे क्यों चुना?

ख़ानसाब: रुद्र वीणा को ही चुनने के आपके सवाल पर मैं ज़रा तफ़सील से बात करूँगा; क्योंकि जब तक आपको इसके बारे में कुछ बातें मालूम न हों, तब तक इस सवाल का जवाब पूरी तरह समझ में नहीं आ सकता।

मैं एक 'परंपरा' वाला व्यक्ति हूँ। परंपरा का मतलब होता है पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलने वाली सामाजिक और सांस्कृतिक विरासत। यह कला गुरुजनों से विशेष रूप से मेरे परिवार में, लगभग बारहवीं पीढ़ी से चली आ रही है। मेरे पिताजी ने यह कला अपने पिताजी से सीखी, और उन्होंने अपने पिताजी से।

वीणा बजाने वाले लोगों को 'बीनकर' कहा जाता है और उसका शाब्दिक अर्थ वीणा-वादक होता है। यह एक फ़ारसी शब्द है; 'कार' कार्य करने वाले को कहते हैं, और 'बीन' रुद्र वीणा का उपनाम है। जब पहले लोग कहते थे कि आप बीनकार हैं, तो उसका अर्थ होता था कि आप वीणा बजाते हैं। लेकिन पिछले पचास सालों से यह परिभाषित करने की कोशिश हो रही है कि यह साज़ रुद्र वीणा है, या सरस्वती वीणा, या फिर नारद वीणा है।

पुराने बुज़ुर्ग रुद्र वीणा को ही 'बीन' कहा करते थे, और कई बार इसे 'सरस्वती वीणा' भी कहा जाता था। हालांकि सरस्वती वीणा हमारे दक्षिण भारत में बजाई जाती है, और यह [रुद्र वीणा] उससे मिलती-जुलती है। भगवान शिव ने पार्वती जी से प्रभावित होकर इस साज़ को बनाया था। वैसे वाद्य-यंत्र तो एक ही बना, लेकिन बजाने की क्रिया और तकनीक अलग-अलग रखी गईं। इस वजह से नाम अलग-अलग पड़े, अर्थात रुद्र वीणा, नारद वीणा और सरस्वती वीणा—ये सभी एक ही वीणा के नाम हैं। अब मैं आपके सवाल पर आऊँगा। मैं एक वीणा-वादक परिवार की बारहवीं पीढ़ी से हूँ। अब आने वाली पीढ़ी की ज़िम्मेदारी को ज़की हैदर पूरी करेंगे, और उनके बाद भी यह परंपरा चलती रहेगी—इंशाल्लाह!

What is the Rudra Veena to you, and why did you choose it?

Khansaab: On your question about why I chose the Rudra Veena, I will speak in a bit of detail, because unless you know a few nuances about it, you cannot fully understand the answer.

I am a person of "tradition". By tradition, I mean a social and cultural inheritance that continues from generation to generation. This art has come down through gurus—especially in my family—for about twelve generations. My father learnt this art from his father, and he in turn, from his father.

People who play the Veena are called "Beenkar", and its literal meaning is "Veena player". It is a Persian word: "kar" means the doer, and "been" is a name used for the Rudra Veena. Earlier, when people said that you are a Beenkar, it meant that you play the Veena. But for the last fifty years, there has been an attempt to define whether this instrument is the Rudra Veena, the Saraswati Veena, or the Narad Veena.

In earlier times, elders used to call the Rudra Veena itself "been," and it was also often called "Saraswati Veena". Although the Saraswati Veena is played in South India, this [Rudra Veena] resembles it. Lord Shiva, being influenced by Parvati Ji, invented this instrument. In any case, the instrument was only one, but the act of playing and the technique were kept different. Because of this, the names changed—Rudra Veena, Narad Veena, and Saraswati Veena, but these are all names for the same Veena.

सबसे बड़ी बात यह है कि इसमें ख़ास तौर पर कुछ ऐसे अनूठे कला-तत्व हैं, जो बहुत ज़्यादा मुश्किल तो नहीं, लेकिन विशिष्ट अवश्य हैं। जैसे कि ध्रुपद एक गायन-शैली के रूप में आता है, वैसे ही वाद्य-संगीत में ध्रुपद से बिल्कुल निकट जुड़ी रुद्र वीणा है। इसके पश्चात ताल-वादक और अन्य संगतकारों की भूमिका आती है; उनके लिए भी यह कला आसान नहीं है; क्योंकि मुख्य कलाकार के साथ सामंजस्य बिठाना एक अत्यंत उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य है। हमारे पूर्वज इस परंपरा को भगवान शिव की ईजाद से जोड़ते हैं—पुराणों में ऐसा माना जाता है कि उन्होंने ही रुद्र वीणा की रचना की; और इसे हमारी परंपरा में एक महत्त्वपूर्ण तथा सर्वमान्य मान्यता के रूप में स्वीकार किया जाता है।

इसके साथ-साथ आपका यह सवाल भी था कि मैंने रुद्र वीणा को ही क्यों चुना और धारण किया? तो ख़ास तौर पर इन ललित कलाओं में—यानी जो प्राचीन विधाएँ थीं—उनमें वीणा सबसे अद्वितीय और प्राचीन है, जो अनादि काल से परंपरा के रूप में चली आ रही है। दो-तीन ख़ानदान इसमें रहे हैं, जिनमें मेरा ख़ानदान सबसे ऊपर है, और जिसे 'जयपुर बीनकार घराना' कहा जाता है।

वीणा को चुनने के लिए, या इसका वादक बनने के लिए, एक तरह की मंसूबाबंदी होती है, और वह ख़ानदान द्वारा, यानी कि माता-पिता और पूर्वजों के द्वारा की जाती है। ये सारी चीज़ें ज़रूरी हैं। मैं अपने पिताजी का एकलौता बेटा हूँ। मेरी एक बड़ी बहन थीं, फ़रीदा, और दो छोटी बहनें हैं, जिनमें से एक मौजूद हैं , माशाअल्लाह!

अब जब उनका बेटा हुआ, तब उन्होंने एक मंसूबा बनाया। जब मैं १-२ साल का था, तब से पिताजी ही मुझे अपने पास सुलाया करते थे। जबकि आम तौर पर इतना छोटा बच्चा, जिसकी उम्र साल डेढ़ साल की हो, जो न स्कूल जाने के लायक हो, न तालीम के- उसे माँ ही अपने पास रखा करती है। पर मेरे पिताजी के कहने पर माँ मुझे खिला पिला कर उनके हवाले कर दिया करती थीं। अब रात में जब भी मेरी आँख खुलती थी, या मैं रोता था, या

Now I will come to your question. I am from the twelfth generation of a family of Veena players. And the mantle of the coming generation will be carried by Zaki Haider, and even after him this tradition will continue–Inshallah!

The biggest thing is that, especially in this artform, there are some unique artistic elements which might not be very difficult, but are certainly distinctive. Just as Dhrupad comes as a style of singing, in the same way, in instrumental music, the Rudra Veena is very closely connected with Dhrupad. After this comes the role of the tabla player and other accompanists; for them, too, this art is not easy, because to establish coordination with the lead artist is a task bearing great responsibility. Our ancestors connect this tradition with Lord Shiva's invention in the Puranas; it is believed that he himself created the Rudra Veena, and this belief is widely accepted in our tradition.

Along with this, your question was also why I chose and adopted the Rudra Veena. So, especially in these arts—that is, in the ancient disciplines—the Veena is the most unique and the most ancient, and it has continued as a tradition from time immemorial. Two or three families have remained in it; among them, my family is at the top, and it is called the 'Jaipur Beenkar Gharana'.

To choose the Veena or become its player, there is a specific planning involved, typically done by the family, specifically by the parents and forefathers. All these things are necessary. I am my father's only son. I had an elder sister, Farida, and I have two younger sisters, of whom one is present,

चिल्लाता था, या कुछ भी करता था, तो पिताजी ही मुझे चुप कराते थे या दिलासा देते थे।

हमारे ख़ानदान में ख़ास तौर पर रात में रियाज़ करने का मिज़ाज है। तो पिताजी की भी यही आदत थी । रात के १० बजे के बाद से लगभग २-२:३० बजे, और कभी-कभी ३ बजे तक वे रियाज़ किया करते थे। उनका मुझे अपने पास ही रखने का सबसे बड़ा मक़सद, जिसका अंदाज़ा मुझे बाद में हुआ, था कि मेरे कानों में बचपन से ही वीणा की आवाज़ जाती रही।

अभी फ़िलहाल मेरी तालीम का यह सवाल नहीं था कि कौन सा राग बज रहा था, या कौन सा साज़ छिड़ रहा था। बस यह कि वे आवाज़ मेरे कानों तक पहुँचती रहे। जब मैं लगभग साढ़े तीन या चार साल का हुआ, तब मेरी वोकल की शिक्षा शुरू कराई गई। पढ़ाई की शुरुआत भी तभी हुई थी, और बचे हुए वक़्त में मैं सा-रे-गा-मा, यानी सरगम का रियाज़ करता था। मुझे एक छोटा सा तानपुरा थमा कर कहा जाता था कि चलो, उधर कोने में बैठकर रियाज़ करो। सुर ज्ञान की नींव गायन से ही रखी गई थी।

"उनका मुझे अपने पास ही रखने का सबसे बड़ा मक़सद, जिसका अंदाज़ा मुझे बाद में हुआ, था कि मेरे कानों में बचपन से ही वीणा की आवाज़ जाती रही"

हम जिन्हें पलटे कहते हैं, यानी जिन्हें अभ्यास कहते हैं, मैं वही किया करता था, और उनसे ही सुरों की पहचान होती थी कि गले से, दिल से, दबाव से–कौन सा सुर कहाँ से सही तरह से निकल रहा है। वे हमें यही अभ्यास बताया करते थे, और यह रियाज़ साल-डेढ़ साल तक लगातार चलता रहा। फिर जब मैं लगभग ५-६ साल का हुआ, तब मुझें सितार बजाना बताया गया, ख़ास तौर से 'वीणा अंग' का सितार, ताकि मैं कम से कम तकनीकी तौर पर इसका आदी हो जाऊँ।

Masha'Allah!

When his son was born, my father made a plan. When I was only 1–2 years old, he would have me sleep by his side. Ordinarily, a child that young—a year or a year and a half old—who is fit neither for school nor for taalim, is kept by the mother with her; yet my father kept me close to him even then. After my mother had fed me, she would hand me over to him; this was the arrangement at night as well. It meant that whenever I woke, or cried, or shouted, or did anything at all, it was my father who would quieten me or offer me solace.

Our family has, especially, a temperament for doing riyāz at night, and my father too had the same habit. After 10 PM, until about 2-2:30 and sometimes till 3, he used to do riyāz. The biggest purpose of keeping me close to him, which I understood only later, was that from childhood, the sound of the Veena would keep reaching my ears.

For the time being, in my taalim, the question was not which raag was being played, or which saaz was being sounded—only that the sound should keep reaching my ears. When I was about three-and-a-half or four, my vocal education began. My schooling also started at the same time, and in the remaining time, I would practice sa-re-ga-ma, that is, the sargam. A small tanpura was placed in my hand, and I was told, "Come on, sit over there in the corner and do riyāz". The foundation of my knowledge of notes was laid through singing.

I used to do what we call *palte*, that is, ex-

जब मैं ११-१२ साल की उम्र का हुआ, तब मेरे कंधे पर वीणा की ज़िम्मेदारी सौंपी गई, और मेरे लिए एक छोटा सा आसन भी बनवाया गया। जैसा कि आपको मालूम है कि मैं वज्रासन में बैठता हूँ, तो मुझसे उसी का अभ्यास करवाया गया। यानी कि, चाहे मैं गा रहा हूँ या सितार बजा रहा हूँ, लेकिन रियाज़ असल में इसी आसन में बैठने का हो रहा था। यानी जब मैं लगभग १२ साल का था, तब वीणा का अभ्यास शुरू कराया गया।

अब देखिए कैसे यह सब कितनी बारीकी से योजनाबद्ध किया गया था–उस बच्चे को न तो यह पता है कि यह कितना ज़रूरी है, न उसे इसमें रुचि थी, और न ही वीणा की ध्वनि का अंदाज़ा, बस यह तय हो गया थी कि उसे यही करना है। तो उस बच्चे को एक तरह से सख़्त तालीम दी गई और तैयारी कराई गई। इसलिए यह सवाल पैदा ही नहीं होता कि वीणा को मैंने क्यूँ चुना? यह मेरे चुनने की बात नहीं थी, यह तो उन्होंने चुना था।

तो एक लंबे अरसे तक मेरी तालीम और पढ़ाई लिखाई साथ-साथ जारी रखी गई। घर पर शिक्षक भी आते थे और मैं विद्यालय भी जाता था। रियाज़ और पढ़ाई का वक़्त अलग-अलग तय किया गया था। फिर वह दौर आया जब मुझे नियम से रियाज़ के लिए बैठाया जाने लगा। शुरुआत २ घंटे से हुई, फ़िर ४, ६, ८, १०, और अंततः १२ से १४ घंटे तक का रियाज़ चलने लगा। तब जाकर कहीं आज मैं इस मुकाम पर पहुँच पाया हूँ। मुझे इस प्रकार की तैयारी से गुज़ारा गया।

मैं अकसर अपने शागिर्दों को एक मिसाल देता हूँ कि जिस तरह एक सिपाही को इसलिए तैयार किया जाता है कि जब मुल्क पर कोई आँच आए, तो वह मैदान-ए-जंग में जाकर लड़ सके और ज़रूरत पड़ने पर अपनी जान न्योछावर कर दे। हर शख़्स वहाँ नहीं जा सकता। अब आप मुझे बंदूक थमा कर यह नहीं कह सकते कि देखिए देश पर कैसा वक़्त आ गया है, आप जाइए और लड़िए।

लेकिन उस सिपाही की तरह ही मुझे मेरी कला की

ercises, and through them one recognizes the notes, through the throat, the heart, through pressure, which note is correctly coming out from where. He used to show us these very exercises, and this riyāz continued continuously for a year to a year and a half. Then, when I was about 5-6 years old, I was taught to play the sitar, especially the sitar in "veena ang," so that at least technically I would become accustomed to it.

When I was 11 or 12 years old, the responsibility of the Veena was placed on my shoulders, and a small asana (seating platform) was also made for me. As you know, I sit in vajrasana, so I was made to practice that. That is, whether I was singing or playing the sitar, the riyāz was really of sitting in that asana. Then, when I was about 12 years old, Veena's practice was started.

Now see how meticulously all this was planned. That child neither knew how important it was, nor had any interest in it, nor even any sense of the Veena's sound. It was simply decided that this is what he had to do, so the child was given, in a way, a strict taalim and preparation. Therefore, the question of *why I chose the Veena* does not even arise. It was not a matter of my choosing; *they chose it*.

For a long time, my taalim and my studies continued side by side. Teachers would come home, and I would go to school as well. The time for riyāz and the time for studies were fixed separately. Then came the phase when I was made to sit regularly for riyāz. It started with 2 hours, then 4,

ज़िम्मेदारी सौंपी गई है–मुझे उस सिपाही की तरह ही तैयार किया गया है कि जैसा भी वक़्त आए, जैसी भी परेशानियों की हद से गुज़रना पड़े, मुझे उनका मुक़ाबला करना है। कोई सुने न सुने, कोई पसंद करे न करे, पैसे मिलें न मिलें, कोई सीखे न सीखे, लेकिन मुझे यही करना है। क्योंकि यह मेरे ख़ानदान की ज़िम्मेदारी है, और मुझे इस परंपरा को क़ायम रखना है।

जब मुझे यह तालीम दी गई, तो यह तय था कि इसमें पूरा जीवन देना होगा। यह महज़ शौक की बात नहीं है, न ही इसका उद्देश्य केवल मनोरंजन है। इसलिए मेरे चुनने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। यह तो उनकी–गुरु की कृपा थी। जब मुझे इसमें रस आने लगा, तो मैंने हर दिन १२-१४ घंटे तक रियाज़ किया। आज भी उसी मुकाम को पाने के लिए रियाज़ करता हूँ। बस, यही असल बात है।

Ustaad Asad Ali Khan playing Rurdra Veena.
Public Domain

आपने फिर पढ़ाई-लिखाई और रियाज़ में तालमेल कैसे बैठाया ?

ख़ानसाब: हाँ, यह बहुत अहम बात है। मेरे वालिद–उस्ताद सादिक अली खान साहब, जो हिंदु-

6, 8, 10, and finally, riyāz went on up to 12 to 14 hours. Only then have I been able to reach this level today. I was made to go through this kind of preparation.

I often give my students an example: a soldier is trained so that when their country is in danger, they can go to the battlefield, fight, and, if necessary, sacrifice their life. Not everyone can go there. Now you cannot simply put a gun in my hand and say, "Look at what kind of time the country is going through; go and fight."

But just like that soldier, the responsibility of my art has been entrusted to me. I have been prepared like that soldier, so that whatever time comes, and however far I have to go through hardships, I have to face them. Whether anyone listens or not, whether anyone likes it or not, whether money is received or not, whether anyone learns or not, I still have to do this. Because this is my family's legacy, and I have to keep this tradition going.

When this taalim was given to me, it was already decided that I would have to give my whole life to it. This is not merely a hobby, nor is its purpose only entertainment. Therefore, the question of my choosing it does not arise. This was their grace, the guru's grace. When I began to develop a taste for it, I practiced for 12 to 14 hours a day. Even today, I practice to reach that same level. That is the real thing.

Then how did you coordinate your schooling and your riyāz?

Khansaab: Yes, that is a very important point. My father, *Ustad Sadiq Ali Khan*

स्तान के बेहद मशहूर वीणावादक थे, उन्हें नवाब-ए-रामपुर ने अपने यहाँ दरबारी संगीतकार के तौर पर बुला लिया था। हमारे बुज़ुर्ग पहले अलवर-जयपुर में थे, फिर रामपुर आ बसे। तो मेरी सारी तालीम और परवरिश वहीं हुई। इस लिहाज़ से रामपुर ही मेरा असली घर है।

"पूरे दिन का एक खाका बना हुआ था, जो मेरे कमरे के दरवाज़े पर बिल्कुल कैलेंडर की तरह टँगा रहता था"

मेरी दिनचर्या का निज़ाम ऐसा था कि मैं सुबह ५-५:३० बजे उठता, तैयार होकर इबादत करता, और फिर रियाज़ के लिए बैठ जाता था। १० से ४ बजे तक विद्यालय होता था, तो मैं सुबह ९ बजे तक, यानी दो से ढाई घंटा रियाज़ करके ही पढ़ने जाता था। विद्यालय घर के बिल्कुल करीब था, तो बचपन से ही वहाँ जाने का सिलसिला शुरू हो चुका था।

शाम ४ बजे वापसी के बाद, घंटे भर आराम करता और फिर मास्टर साहब घर आ जाया करते थे, वे मुझे कभी गणित, कभी अंग्रेज़ी या फ़ारसी, और जो भी ज़बानें मुझे सीखनी थीं, पढ़ाते थे। ६ बजे उनके जाने के बाद फिर इबादत का वक़्त हो जाता। उसके बाद ७ बजे से मैं फिर रियाज़ में जुट जाता।

पूरे दिन का एक खाका बना हुआ था, जो मेरे कमरे के दरवाज़े पर बिल्कुल कैलेंडर की तरह टँगा रहता था। उसमें सब दर्ज था कि किस वक़्त रियाज़ करना है, कब इबादत करनी है, कब किस से मिलना है, कब पढ़ाई करनी है, और कब बाहर जाना है। हाई स्कूल तक तो यही दस्तूर रहा, क्योंकि विद्यालय का वक़्त मुकर्रर था। जब कॉलेज में गया, तब जाकर थोड़ी रियायत मिली।

वहाँ वह विद्यालय आज भी है। हाल ही में बाहर के कुछ लोगों ने मुझ पर एक वृत्तचित्र बनाया है।

Sahab, who was a very famous Veena player in Hindustan, was called by the Nawab-e-Rampur to serve as a court musician. Our elders were first in Alwar, Jaipur, and then they settled in Rampur. So all my training and upbringing took place there. In that sense, Rampur is my real home.

My daily routine was arranged so that I would wake up at 5:00 or 5:30 AM, get ready, offer my prayers, and then sit for riyāz. School was from 10:00 AM to 4:00 PM, so I would go to study only after practicing until about 9:00 AM, that is, for two to two-and-a-half hours. The school was very close to our house, so this routine had already begun in childhood.

Upon returning at 4 PM, I would rest for an hour, and then Master Sahab would come to our house. He would teach me sometimes mathematics, sometimes English or Persian, and whatever other languages I had to learn. After he left at 6 PM, it would be time for prayers again. After that, from 7 PM onward, I would again get down to riyāz.

A complete outline of the day was already made and was hung on the door of my room, exactly like a calendar. Everything was written there: at what time to do riyāz, when to pray, when to meet whom, when to study, and when to go out. This order continued until high school, because the school hours were fixed. Only when I went to college did I get a little concession.

The school is still there to this day. Only recently, some people from outside made a documentary about me. It is a detailed documentary of about an hour and a quar-

यह लगभग सवा–डेढ़ घंटे का एक विस्तृत वृत्त-चित्र है, जो मेरे पूरे जीवन पर आधारित है। इसमें रामपुर जाकर मेरे विद्यालय को दिखाया गया है कि मैं कहाँ पढ़ता-लिखता था, कहाँ बैठता था, और कहाँ रियाज़ करता था।

जैसे कि कहा जाता है कि शास्त्रीय कलाएं, विशेषकर शास्त्रीय संगीत, मूलतः एक साधना या ध्यान है। तो जब आप साज़ बजाते हैं, तब आपके भीतर क्या घटित होता है?

ख़ानसाब: यह सब हमारे गुरुजनों और बुज़ुर्गों की दी हुई तालीम, यानी शिक्षा है। गुरुजन तालीम देने के बाद यह आशीष देते हैं कि परमात्मा तुम्हारी आत्मा को अच्छी रखे। इसलिए यह आत्मा या रूहानियत वही, यानी ईश्वर देगा, और इसलिए उससे प्रार्थना करो, और उसे याद करो। उसे याद करके ही साज़ बजाओ, और इसमें अपनी आत्मा डालो। गुरु केवल तालीम दे सकता है, वह आत्मा नहीं डालता, और डाल भी नहीं सकता।

गुरु अपनी ओर से पूरी ईमानदारी और न्याय के साथ शागिर्द या बेटे को तालीम सौंपता है। लेकिन वह यह सीख ज़रूर देता है कि संगीत में शक्ति और असर पैदा करने वाला परमात्मा ही है। उसे याद करो, उसे सुनाओ, उसे मन में उतारो, और अपनी हाज़िरी लगाओ। यदि वह चाहेगा, तो तुम्हारे सुरों में तासीर, यानी असर बख्शेगा। लोग उसी असर को पसंद करते हैं, क्योंकि वह किसी की सिखाई हुई विद्या से नहीं, बल्कि ईश्वरीय कृपा से आता है।

रियाज़ करना और अभ्यास करना हमारा काम है, और हमसे रियाज़ करवाना गुरुजनों का काम है। लेकिन इसके साथ-साथ प्रार्थना भी ज़रूरी है। जब मैं सुबह रियाज़ के लिए बैठता हूँ, तो उससे लौ लगाता हूँ और दुआ माँगते हूँ कि हे ईश्वर, इन सुरों में असर भरने वाला तू ही है।

देखिए, एक होता है केवल अभ्यास, और एक होती है आत्मा। चूँकि मैंने फ़ारसी ज़बान का अध्ययन किया हुआ है, तो मैं आपको दो लफ़्ज़ बताता

ter to an hour and a half, based on my whole life. In it, they went to Rampur and showed my school, where I used to study, sit, and do riyāz.

It is often said that the classical arts, especially classical music, are basically a form of sādhanā or meditation. So when you play an instrument, what happens within you at that time?

Khansaab: This is the taalim, meaning the education, given to us by our gurus and elders. After giving taalim, the guru gives this blessing: "May the Parmātmā keep your ātmā in a good state." Therefore, this self, or spirituality, is the same thing that God will give, and so pray to Him, and remember Him. Remember Him and only then play the instrument, and put your ātmā into it. A guru can only give the taalim; he does not put the ātmā into it, and he cannot do so either.

On his part, the guru entrusts the taalim to the disciple or son with complete honesty and fairness. But he also indeed teaches that the Parmātmā alone is the one who imparts power and effect to music. Remember Him, play for Him, let Him settle into your mind, and present yourself before Him. If He wills, He will grant taaseer, meaning effect, to your notes. People like that very effect because it comes not from anyone's taught knowledge but from divine grace.

Riyāz and practice are our duty, and making us do riyāz is the work of the gurus. But along with this, prayer is also necessary. When I sit for riyāz in the morning,

हूँ: एक है रियाज़, और एक है रियाज़त। इन दोनों में बहुत बड़ा फ़र्क है। अभ्यास तो सभी करते हैं, लेकिन हमारे भारतीय संगीत में एक विचित्र बात है। आम पढ़ाई-लिखाई में, जैसे आपने बाल कक्षा से लेकर स्नातकोत्तर तक परीक्षाएँ पास कीं और उपाधियाँ लीं, उपाधि लेने के बाद आप वापस बाल कक्षा की किताबें रोज़ नहीं पढ़ते। भाषा और तकनीकी समझ आप हासिल कर चुके होते हैं, इसलिए आप केवल अपने वर्तमान विषय का, चाहे वह गणित हो या रसायन शास्त्र, का ही अभ्यास करते हैं। मगर संगीत में ऐसा नहीं है। हम आज भी वही अभ्यास दोहराते हैं जो हमने पहले दिन, या आरम्भिक कक्षा में शुरू किया था, ताकि हमारा कौशल और तकनीकी पकड़ बनी रहे।

"एक है रियाज़, और एक है रियाज़त। इन दोनों में बहुत बड़ा फ़र्क है"

यह एक पहलवान की तैयारी की तरह है। अगर पहलवान कसरत छोड़ दे, तो उसका शरीर बेकार हो जाएगा। इसलिए हमें रोज़ वहीं लौटना पड़ता है जहाँ से हमने शुरुआत की थी। यह तो हुआ अभ्यास। अब सवाल है कि रियाज़ और रियाज़त में क्या अंतर है। आपने सर्कस देखा होगा, जैसे रशियन सर्कस है–वहाँ नट और बाज़ीगर जो कमाल के करतब दिखाते हैं, वह वर्षों की मेहनत का नतीजा होता है। उनका शरीर इतना सधा हुआ होता है कि कोई साधारण व्यक्ति वह नहीं कर सकता। लेकिन वह क्या है?- वह रियाज़ है। उन्होंने केवल अपने जिस्म को साधा है। अब आपने वह अभ्यास नहीं किया, इसलिए आप वह नहीं कर सकते, पर वे कर सकते हैं। लेकिन यह साधना नहीं है, यह केवल शारीरिक अभ्यास है। इसमें शरीर को साधा जाता है। लेकिन ४०–५० साल की उम्र के बाद वे वह करतब नहीं कर सकते, क्योंकि शरीर साथ छोड़ देता है।

मगर हमारा संगीत अलग है। हमारे इस अभ्यास

I attach myself to Him and ask in prayer: "O God, it is You alone who fills these notes with effect."

See, one thing is only practice, and another thing is the ātmā. Since I have studied the Persian language, I will tell you two words: one is riyāz, and another is riyāzat. There is a massive difference between the two. Everyone practices, but in our Indian music there is a strange thing. In ordinary schooling, as you pass examinations from the early class up to postgraduate level and take degrees, after taking the degree, you do not go back and read the early-class books every day. You have acquired the language and the technical understanding, so you practice only your current subject, whether it is mathematics or chemistry. But in music, it is not like that. Even today, we repeat the same exercises that we began on the first day, or in the initial class, so that our skill and technical grip remain.

Think of a wrestler: if he abandons his exercise, his body will become useless. That is why we have to return every day to the very place from where we began. This is practice. Now the question is what is the difference between riyāz and riyāzat. You must have seen a circus, for example the Russian circus; there the acrobats and performers show remarkable feats, and that is the result of years of their hard work. Their bodies are so well-trained that an ordinary person cannot do it. But what is that? That is riyāz. They have trained only their body. Now you have not done that practice, so you cannot do it, but they can. But this is not sādhanā, this is only physical practice. In this, the body is

में आत्मा बसती है। जो हमने साधा है, उसकी असली शुरुआत तो ४० साल के बाद होती है। यही साधना है, और यही एक साधक और केवल अभ्यास करने वाले में अंतर है। हम वर्षों तक अभ्यास इसलिए करते रहे ताकि साधना के स्तर तक पहुँच सकें, और जब साधना सिद्ध होने लगती है, तब हम उस परम आत्मा को याद करके अपने सुरों में असर पैदा करने की कोशिश करते हैं। असली समय तो तब आता है।

> "यही साधना है, और यही एक साधक और केवल अभ्यास करने वाले में अंतर है"

वह शारीरिक कसरत बस एक आदत की तरह है। शरीर को उसका अभ्यस्त हो जाता है। नृत्य में भी यही है–आपने शरीर को साधा, ४० साल तक आप बहुत अच्छा प्रदर्शन कर सकते हैं, लेकिन उसके बाद वैसा प्रदर्शन संभव नहीं होता। किंतु एक संगीतज्ञ के लिए आमतौर पर लगभग ४० साल के बाद ही काम में निखार आना शुरू होता है। हम उस परमात्मा को याद करके, अपनी कला में आत्मा डालने की कोशिश करते हैं।

जब वह ताल-मेल बैठता है, तो कैसा अनुभव होता है?

ख़ानसाब: वह अनुभव ऐसा होता है मानो आज हमें सब कुछ मिल गया हो। उस संगीत का सबसे पहला श्रोता मैं स्वयं हूँ, बाकी सब बाद में। रियाज़ करके मैं बैठ गया,अब प्रयास यह है कि अपने साज़ में आत्मा ला सकूँ। कोई एक स्वर ऐसा लगे जिससे रूह खुश हो जाए। संगीत रूह की गिज़ा, यानी खुराक है–आत्मा का भोजन यही है। आत्मा हमेशा इस तलाश में रहती है कि कहीं से वह सच्ची आवाज़ मिले।

आखिरकार मैं भी तो एक आत्मा हूँ, एक संगीत-कार हूँ। मेरी आत्मा कब खुश होगी? मान लीजिए

trained. But after the age of 40 or 50, they cannot do those feats, because the body stops supporting them.

But our music is different. In this practice of ours, the ātmā dwells. What we have trained, its real beginning happens only after 40 years. This is sādhanā, and this is the difference between a sādhak and one who only practices. We kept practicing for years to reach the level of sādhanā, and when sādhanā begins to become accomplished, then, remembering that Supreme ātmā, we try to bring effect into our notes. The real time comes only then.

That physical exercise is just like a habit. The body becomes used to it. It is the same in dance too; you train the body, and for 40 years you can perform very well, but after that such performance is not possible to maintain. But for a musician, generally, only after about 40 years does refinement in the work begin to appear. Remembering God, we try to put ātmā into our art.

When that coordination falls into place, what kind of experience is it?

Khansaab: That experience is as if I had received everything today. The very first listener of that music is I myself; everyone else comes later. Having done riyāz, I sit down, and now the effort is to bring ātmā into my saaz. Let there be even one note that makes the rūḥ happy. Music is the food of the rūḥ, that is, its nourishment; this is the food of the ātmā. The ātmā is always in search of this, that it may, from somewhere, receive an authentic sound.

मैं राग मुल्तानी का रियाज़ कर रहा हूँ या प्रस्तुति दे रहा हूँ, जो कि सूर्यास्त का राग है। उस राग की प्रदर्शनी के दौरान शिष्य को कोई तान, कोई मुखड़ा, या कोई एक स्वर बहुत पसंद आ गया, लेकिन उसे यह नहीं पता कि वह तकनीकी रूप से क्या है, बस उसे वह ध्वनि अच्छी लगी। वह पूछता है–"गुरुजी, यह कैसे होगा?" अब वह कोशिश करता है। गुरु उसे बारीकियाँ बताता है और यदि रियाज़ करते-करते इत्तेफाक से कभी उससे वह सही सुर लग गया, तो जो खुशी होती है, उससे रूह खिल उठती है- यह प्राप्ति अमूल्य है। संगीतकार जानते हैं कि उसकी असली कीमत क्या है।

"उस संगीत का सबसे पहला श्रोता
मैं स्वयं हूँ, बाकी सब बाद में"

यदि आप सच्चे साधक हैं और आपने गहरा रियाज़ किया है, तो जब भी आप बजाएँगे, वह सच्चाई और असर अपने आप निखर कर सामने आएगा। लोग उसे ही पसंद करेंगे, क्योंकि वह दिल से निकली आवाज़ है। आपने अभ्यास से उसे पाया है, पर वह अपने-आप में इतना सच्चा है कि उस स्वर के आगे सब फीका है।

अब सवाल यह है कि हमारे और पाश्चात्य, यानी यूरोपीय, संगीत में मूल अंतर क्या है? उनका संगीत, चाहे वह ईरानी हो या अरबी, बहुत उम्दा है। उनके पास बेहतरीन गले हैं। लेकिन अगर तुलना की जाए, तो एक बड़ा फ़र्क है। उनका कमाल है उनकी लिपि और सटीकता। मान लीजिए मैंने एक राग या तान की स्वरलिपि लिखकर आपके विश्वविद्यालय भेज दी, और आप बैंगलोर में हैं और वायलिन बजाती हैं। आपने वह पर्चा सामने रखा, प रे ध रे म प, और उसे हूबहू वैसा ही बजा दिया जैसा मैंने लिखा था। यह आपकी निपुणता है। पाश्चात्य जगत में पुराने उस्तादों की लिखी हुई रचनाएँ आज भी १५० वायलिन वादक एक साथ, एक ही समय पर, पर्चा सामने रखकर बिल्कुल

After all, I too am an ātmā, and I am a musician. When will my ātmā be happy? Suppose I am doing riyāz on Raag Multani, or giving a performance in Raag Multani, which is a Raag of sunset. During the presentation of that raag, the disciple likes some taan, some mukhda, or some single note very much, but he does not know what it is technically; he only feels that the sound is good. He asks, "Guruji, how will this happen?". Now he tries. The guru tells him the finer points, and if, while doing riyāz, he, by coincidence, once places that note correctly, then the happiness that follows makes the rūh bloom. This attainment is priceless. Musicians know what its real value is.

If you are a genuine seeker, and you have done deep riyāz, then whenever you play, that truth and effect will, on its own, come out clearly. People will like that alone because it is a sound that comes from the heart. You have attained it through practice, but in itself it is so true that, before that note, everything else feels pale.

Now the question is: what is the fundamental difference between our music and Western, that is, European, music? Their music, whether it is Iranian or Arabic, is very fine. They have excellent voices. But if one compares, there is a big difference. Their excellence is their notation and precision. Suppose I wrote the notation for a raag or a taan and sent it to your university, and you are in Bangalore and play the violin. You kept that sheet in front of you, "pa re dha re ma pa," and you played it precisely as I wrote it. This is your skill. In the Western world, compositions by

एक जैसा बजाते हैं। यह उनकी निपुणता है।

लेकिन हमारे यहाँ का चिंतन और सोच अलग है। मैं सामने बैठकर सिखा रहा हूँ, खुद गाकर बता रहा हूँ, उसकी तकनीक समझा रहा हूँ, सुर बता रहा हूँ। भले ही मैं लिखकर भी दे दूँ, फिर भी वह वैसा नहीं बजेगा जैसा मेरे सिखाने पर बजेगा, क्योंकि भारतीय संगीत तब तक पूर्ण नहीं होता, जब तक कि आप उसमें अपनी आत्मा न डाल दें।

"यदि आप सच्चे साधक हैं और आपने गहरा रियाज़ किया है, तो जब भी आप बजाएँगे, वह सच्चाई और असर अपने आप निखर कर सामने आएगा"

कहते हैं कि एक बार आत्मा का एहसास हो जाए तो फिर मन उसी को खोजता है। पर यह इतनी आसानी से मिलती भी नहीं है। आपको उस मुकाम तक पहुँचने में कितना समय लगा?

ख़ानसाब: उसके लिए समय की कोई सीमा नहीं है। पूरी ज़िंदगी भी कभी-कभी कम पड़ जाती है। यहाँ तक कि गुरु भी यह नहीं बता सकते कि यह कब होगा। हमारा काम बस रियाज़ करके अपने-आप को माँजते, यानी अपने संगीत को साफ़ करते रहना है। हो सकता है कि अभी न हो, लेकिन एक सच्चाई यह है कि अगर आप सच्चे रास्ते पर हैं, तो वह हासिल ज़रूर होगा।

जैसा कि अभी आपने बताया कि पश्चिमी संगीत में सब कुछ लिखकर दिया जा सकता है और उसे पढ़कर शिष्य पूरी सटीकता से बजा भी सकते हैं। लेकिन भारत में 'गुरु-शिष्य परंपरा' है, जहाँ गुरु सामने बैठकर सिखाते हैं। इसके बारे में आप थोड़ा विस्तार से बता सकते हैं?

ख़ानसाब: वहाँ पुरानी रचनाएँ और बंदिशें लिखित रूप में मौजूद हैं, जिन्हें वे हूबहू उसी तरह बजा सकते हैं। हमारे यहाँ भी शास्त्र लिखा हुआ

old masters are still performed today by 150 violinists together, at the same time, with the sheet music in front of them, all playing precisely the same. This is their perfection.

But here, our way of thinking and understanding is different. I sit in front and teach; I myself sing and show; I explain its technique; I show the notes. Even if I write it down and give it to you, it still will not be played the way it is when taught by me, because Indian music is not complete until you put your ātmā into it.

It is said that once one gets a sense of ātmā, then the mind searches for that alone, but it does not come so easily either. How long did it take you to reach that state?

Khansaab: There is no fixed limit for that. Sometimes, even a whole life turns out to be not enough. Even the guru cannot say when it will happen. Our work is only to keep doing riyāz and keep polishing ourselves, that is, keep refining our music. It may be that it does not happen yet, but one truth is that if you are on the true path, then you will attain it for sure.

As you just said, in Western music, everything can be written down, and by reading it, the student can also play it with complete accuracy. But in India, there is the "guru-shishya parampara," where the guru sits in front and teaches. Could you tell a little more about this?

Khansaab: There are old compositions and bandishen available in written form, which they can play exactly as written. In

है, लेकिन उस पर अमल कैसे करना है, यह क्रिया केवल गुरु ही बता सकता है। हम गुरु होने के नाते बताते भी हैं और चाहते भी हैं कि शिष्य अच्छा बजाए। लेकिन अगर हम उसे लिखकर दे भी दें, तो भी वह उसे, उसी वक़्त वैसा नहीं बजा सकता, क्योंकि हमारा संगीत रचनात्मक है।

"अगर कोई मुझसे कहे कि 'साहब, जैसा आपने कल बजाया था, आज ठीक वैसा ही फिर से बजा दीजिए', तो वह वैसा नहीं होगा"

उदाहरण के तौर पर, मान लीजिए मैंने आई-आई-टी दिल्ली में पहले राग यमन-कल्याण बजाया है, और वह बहुत सफल भी रहा, लोगों को बहुत पसंद आया। अब अगर कोई मुझसे कहे कि 'साहब, जैसा आपने कल बजाया था, आज ठीक वैसा ही फिर से बजा दीजिए', तो वह वैसा नहीं होगा। मैं चाहूँ तो भी नहीं होगा। हो सकता है उससे बेहतर हो जाए, या उससे कुछ कम रह जाए, लेकिन बिल्कुल वैसा नहीं होगा। इसका कारण क्या है? कारण यह है कि हमारे संगीत में हर पल सृजन, यानी नवनिर्माण, होता है। सुर वही हैं, सब कुछ वही है, लेकिन उस पल मेरी आत्मा और मेरे मन की जो उपज है, वह उसे नया रूप देती है। यह बात लिखकर नहीं समझाई जा सकती। यह किसी किताब में नहीं मिलेगी। इसीलिए हमारे संगीत में हर बार वही सुर नया लगता है। सुर नहीं बदलेंगे, लेकिन अंदाज़ हर बार नया होगा। अगर गुरु ने आज कुछ लिखवाया भी है, तो कल वह ठीक वैसे का वैसा ही निकले, यह संभव नहीं है।

तो मूलतः गुरु की क्या भूमिका है? जब 'आत्मा' शिष्य खुद डालता है और हमारा संगीत हर बार बदलता रहता है, तो क्या गुरु की ज़िम्मेदारी केवल यह देखना है कि हम सही कर रहे हैं या नहीं?

ख़ानसाब: गुरु की भूमिका बहुत बड़ी है। सबसे महत्वपूर्ण काम यह है कि गुरु निरंतर यह परखता

our tradition too, the books are written, but how to act upon them, that practice is something only the guru can tell. As a guru, we also tell it, and we also want the disciple should play well. But even if we write it down and give it, they still cannot play it in the same way at that very moment, because our music is creative.

For example, suppose I played Raag Yaman-Kalyan earlier at IIT Delhi, and it was very successful, with people liking it a lot. If someone tells me, "Sahab, play exactly the same again, as you did yesterday", then it will not be the same. Even if I want to, it will not be the same. It may become better than that, or it may remain somewhat less than that, but it will not be precisely the same. What is the reason for this? The reason is that in our music, at every moment there is creation, that is, new making. The notes are the same, everything is the same, but in that moment, the yield of my ātmā and my mind gives it a new form. This cannot be explained by writing. You will not find this in any book. That is why in our music, every time the same note feels new. The notes will not change, but the manner will be new every time. Even if today the guru has written something down, it is not possible for it to come out precisely the same way tomorrow.

So, fundamentally, what is the role of the guru? When the disciple himself brings in the "ātmā," and our music keeps changing each time, is it the guru's responsibility, only to see whether we are doing it correctly or not?

Khansaab: The role of the guru is imperative. The most important work is for the guru to continuously test whether the

रहता है कि शिष्य का रास्ता सही है या नहीं। वह देखता है कि तकनीकी रूप से शिष्य ठीक जा रहा है या नहीं। उसके स्वरों में वह सच्चाई आई है या नहीं। चूँकि मैं वाद्य की बात कर रहा हूँ, तो गुरु देखता है कि साज़ पर पकड़ सही है या नहीं, सुरों का लगाव और प्रवाह सही है या नहीं।

वह [गुरु] शिष्य की सोच को भी देखता है कि कहीं कोई भटकाव तो नहीं है। अगर शिष्य सही रास्ते पर नहीं है, तो गुरु बार-बार उसे खुद गाकर और बजाकर सुनाता है कि देखो भाई, असली सच्चाई यह है। अभी आपसे यह नहीं हुआ, अभी वह बात नहीं बनी।

"अगर शिष्य सही रास्ते पर नहीं है, तो गुरु बार-बार उसे खुद गाकर और बजाकर सुनाता है कि देखो भाई, असली सच्चाई यह है"

वहाँ (पश्चिमी संगीत में) कोई यह बताने वाला नहीं है, वहाँ अभ्यास और सटीकता है। आपने वही तान, वही स्वर, हूबहू बजा दिए। लेकिन हमारे यहाँ, अगर गुरु ने लिखकर दिया और हमने वैसा ही बजा भी दिया, तब भी अगर उसमें वह सच्चाई नहीं है, तो वह संगीत अधूरा है। यही मुख्य अंतर है।

आज के ज़माने में गुरु-शिष्य परंपरा कि क्या स्तिथि है? क्या इस परंपरा को आज के ज़माने में अहमियत दी जाती है?

ख़ानसाब: सच कहा जाए तो आज के ज़माने में यह परंपरा न के बराबर रह गई है। न अब वैसे गुरु हैं, न वैसे शिष्य। जो असली गुरु हैं भी, वे बहुत गिने चुने रह गए हैं। और जहाँ गुरु-शिष्य परंपरा नहीं है, वहाँ न वह असर है, न वह बात है, न वह सच्चाई है, और न ही वह संगीत है। हम उसे संगीत मानते ही नहीं।

"हम उसे संगीत मानते ही नहीं"

---

disciple's path is correct. He sees whether, technically, the disciple is learning correctly or not, and whether that truth has come into his notes or not. Since I am speaking of an instrument, the guru assesses whether the grasp of the instrument is correct and whether the placement and flow of the notes are correct.

He [Guru] also watches the disciple's thinking to see whether there is any deviation or a loss of the intended path. If the disciple is not on the right path, the guru repeatedly demonstrates by singing and playing, as if to say: "Look, this is the authentic truth; this has not yet happened through you; that thing has not yet come together."

There (in Western music), there is no one to tell you this; there, they have practice and precision. You played the same taan, the same notes, precisely as they were, verbatim. But here, even if the guru has written it down and we have played it precisely that way, still, if that truth is not in it, then that music is incomplete. This is the main difference.

What is the state of the Guru–Shishya tradition in today's age? Is this tradition still given importance today?

Khansaab: To tell the truth, in today's age, this tradition has become almost non-existent. There are no longer gurus like that, nor disciples like that. Even the genuine gurus who do exist have become very few in number. And where the Guru–Shishya tradition is not present, there is neither that effect, nor that depth, nor that truth, nor even that music. I do not even regard

तो हम उस परंपरा को वापस कैसे ला सकते हैं?

ख़ानसाब: परंपरा तो वही ला सकते हैं जिनके पास वह बची हुई है। इसका केवल एक ही रास्ता है कि गुरु-शिष्य परंपरा को फिर से स्थापित किया जाए। इसका कोई छोटा रास्ता नहीं है।

कुछ ऐसे संस्थान हैं जिन्होंने गुरु और शिष्य को एक साथ रखा है। गुरु का कक्ष एक जगह होता है, जहाँ पर वह सोता है, और शिष्य भी उसी तख्त के पास सोता है। जब भी गुरु को कुछ याद आया, चाहे रात हो या दिन, वह शिष्य को उठाता है और कहता है- बैठ जाओ! और इसे समझो। यह नियमित कक्षा से अलग होता है। कोलकाता में आई-टी-सी एस-आर-ए, यानी संगीत रिसर्च एकैडमी, में यही होता है। वहाँ उस्तादों ने अपने शिष्य तैयार किए हैं। पंडित अजय चक्रवर्ती जी, उस्ताद राशिद खान, ये सब वहीं के शिष्य हैं। राशिद खान ने अपने नाना, उस्ताद निसार हुसैन खान साहब से वहीं रहकर सीखा और कामयाब हुए। विदुषी गिरजा देवी जी ने भी वहीं रहकर शिष्य तैयार किए।

उल्हास नागेश कशाळकर जी भी वहीं के शिष्य हैं। वे [कशाळकर] आगरा घराने के उस्ताद लताफत हुसैन खान साहब के शागिर्द हैं और वहीं रहे हैं। इसके विपरीत, ऐसे संस्थान जहां गुरु-शिष्य परंपरा का पालन इतनी लगन से नहीं, और वहाँ के शिष्यों की तैयारी में भी कमी रह जाती है। हिंदुस्तान में ऐसे कई केंद्र हैं पर वहाँ से हमें सधे हुए वादक या संगीतकार अभी तक इसलिए नहीं मिले क्योंकि वहाँ कला तो है, पर कला को सुरक्षित रखने वाली परंपरा नहीं है।

> "वहाँ कला तो है, पर कला को सुरक्षित रखने वाली परंपरा नहीं है"

it as music.

In that case, how can we bring that tradition back?

Khansaab: Only those in whom it has survived can restore that tradition. There is only one way: the Guru–Shishya tradition must be established again. There is no shortcut.

Some institutions have kept the guru and the disciple together. The guru's room is in one place, where he sleeps, and the disciple also sleeps near that same cot. Whenever the guru remembers something, whether it is night or day, they wake the disciple and say, "Sit down! And understand this." This is different from a regular class. At ITC SRA in Kolkata, that is, the Sangeet Research Academy, this is exactly what happens. There, the ustads have trained their disciples. Pandit Ajoy Chakrabarty ji, Ustad Rashid Khan, and all of these disciples are from there. Rashid Khan stayed there and learned from his maternal grandfather, Ustad Nisar Hussain Khan Sahab, and became successful. Vidushi Girija Devi ji also stayed there and trained disciples there.

Ulhas Nagesh Kashalkar ji is also a disciple from there. He [Kashalkar] is a disciple of Agra gharana's Ustad Latafat Hussain Khan Sahab, and he stayed there as well. In contrast, in institutions where the Guru–Shishya tradition is not followed with the same dedication, there remains a shortcoming in the preparation of disciples. And there are many such centers in Hindustan, but from there we have not yet found well-trained instrumentalists or

गुरु अपने गुरु के और अपने बुज़ुर्गों के तजुर्बे बताते हैं। वे बताते हैं कि किस तरह उन्होंने सीखा किन चीजों को सीखने में उन्हें मुश्किलें हुईं–ये सारे किस्से वे हमारे सामने दोहराते हैं। उन्होंने संगीत को जैसा पाया, वैसा ही हमारे सामने रखा। जब उन्होंने यह तालीम दी, उसके साथ-साथ यह भी बताया कि इसमें तकलीफें भी आती हैं। वे अपने आप को इस तरह पेश करते थे, अपनी रूह हमें सुनाते थे, और अपने बड़ों के किस्से बताते थे। यह रास्ता इतना आसान नहीं है, यह आराम से करने वाली चीज़ नहीं है। शिष्य को गुरु की देख-रेख में तैयार इसलिए किया जाता है ताकि यह गुरु-शिष्य परंपरा का सिलसिला चलता रहे। यह अब शिष्य की ज़िम्मेदारी हो जाती है कि वह इस परंपरा को आगे बढ़ाए।

लेकिन यह बात भी है कि अब के दौर में महाविद्यालय से स्नातकोत्तर की उपाधि लेना ज़रूरी है। एक बार विश्वविद्यालय से डिग्री मिल गई, तो आपको आगे नौकरी मिल जाएगी। वैसे उस वक़्त डिग्री का इतना चलन नहीं था।

"वे अपने आप को इस तरह पेश करते थे, अपनी रूह हमें सुनाते थे, और अपने बड़ों के किस्से बताते थे। यह रास्ता इतना आसान नहीं है, यह आराम से करने वाली चीज़ नहीं है"

पर समझने वाली बात यह भी है कि संगीतकार बनने में महारत ऐसी नहीं है कि बस एक बार कामयाब हो गए, तो समझो उस्ताद बन गए या बहुत बड़े कलाकार हो गए–बिल्कुल नहीं! बल्कि हमारे बुज़ुर्गों और गुरुजनों ने ना तो कभी इस सोच को पसंद किया और ना ही हमें ऐसी तालीम दी। उसका हम पर गहरा असर हुआ कि- "अच्छा, संगीत यह भी है!" और तालीम देने के बाद वे कहते थे कि ईश्वर से प्रार्थना करो, क्योंकि असर देने वाला तो वही है। अगर वह असर बख्शेगा, तो

musicians, because there is art, but no tradition to safeguard it.

The guru shares the experiences of his own guru and of his elders. He tells how he learned, and what difficulties he faced in learning certain things, and he repeats all those stories before us. He placed music before us exactly as he had received it. When he gave this training, he also explained that hardships come with it. He would present himself in such a way that we would hear his ātmā, and he would tell the stories of his elders. This path is not so easy; it is not something to be done in comfort. A disciple is trained under the guru's care so that the chain of this Guru–Shishya tradition continues. Now it becomes the disciple's responsibility to carry this tradition forward.

But it is also the case that, in today's time, it is necessary to obtain a graduate degree from a college. Once you have received a degree from the university, you will be able to get a job. In those days, that kind of reliance on degrees was not so prevalent.

But it is also important to understand that mastery in becoming a musician is not about succeeding once and then considering yourself an ustad or a very great artist. Not at all! Instead, our elders and our gurus neither ever approved of this way of thinking nor did they train us in this way. It had a strong effect on us. "So, this is also music!" And after giving training, they would say: Pray to God, because the one who grants the effect is only Him. If God bestows that effect, then people will surely like it.

लोग उसे ज़रूर पसंद करेंगे।

तो ये अनुभव, ये तजुर्बा, ये आत्मा, ये सब उन्हीं की दी हुई तालीम ही तो है। परंपरा का मतलब सिर्फ यह नहीं है कि एक पिता ने बेटे को सिखाया और बेटे ने अपने बेटे को सिखाया। बहुत से ऐसे गुरुजन गुज़रे जिन्होंने अपने बेटों को नहीं सिखाया, तो क्या परंपरा रुक गई? नहीं! बल्कि असल बात यह है कि उन्होंने अपने पुराने अनुभवों की तालीम दी है, उसी ईमानदारी से। वे बताते थे कि उनके बुज़ुर्ग क्या करते थे, क्या चाहते थे, क्या फ़रमाते थे। वे किस तरह प्रस्तुति देते थे, और संगीत को कैसे समझते थे।

अब शागिर्द यह सुन रहा है, देख रहा है, और समझ रहा है कि उन्होंने ऐसा किया तो वे यहाँ तक पहुँचे। फिर एक मंज़िल वह आती है जब वह खुद वही करने लगता है। तब वह उसकी अहमियत, उसकी तकनीक और उसकी मुश्किलों को समझने लगता है कि- "हाँ, यह तो बहुत कठिन है। पता नहीं वे कैसे इन मुश्किलों को पार कर कामयाब हो गए?" तो यह गुरुजनों की तालीम का एक सिलसिला रहा है।

मैं बार-बार इसी बात पर ज़ोर दे रहा हूँ कि गुरु-शिष्य परंपरा तालीम की सबसे बड़ी पाठशाला है। यह चीज़ किसी और विद्यालय में गुरु के बिना नहीं मिल सकती।

"असल बात यह है कि उन्होंने अपने पुराने अनुभवों की तालीम दी है, उसी ईमानदारी से"

हर गुरु का एक तरीका होता है, एक पद्धति होती है। वह उन्हीं तकनीक और बारीकियों को बताता है। तो जब तक गुरु-शिष्य परंपरा में वह तौर-तरीके नहीं होंगे, तो बिना गुरु-शिष्य परंपरा के वैसी कामयाबी नहीं मिल सकती।

अब एक नई यह पहल की गई है कि जब बड़े-बड़े सम्मेलन होते हैं, तो मुझसे और कई संगीतका-

So these experiences, this lived knowledge, this ātmā, all of this is precisely the training they have given. Tradition does not mean only that a father taught his son and the son taught his own son. Many such gurus have passed who did not teach their sons, so did the tradition stop? No! Instead, the real point is that they taught their accumulated, earlier experiences with that same honesty. They would tell what their elders used to do, what they wanted, and what they would prescribe. How they would present, and how they would understand music.

Now the protégé is listening to this, watching it, and understanding that they had did it this way, and have reached this point. Then a stage comes when the shishyas themselves begin to do the very same thing. At that point, they begin to understand its importance, its technique, and its difficulties, thinking, "Yes, this is very hard. Who knows how they managed to cross these difficulties and become successful?" So this has been a continuous chain of training from the gurus.

This is exactly what I keep emphasizing again and again: the Guru-Shishya tradition is the finest school of training. This is something that cannot be found in any other institution without a guru.

Every guru has a way, a method. He explains those very techniques and subtleties. So until those ways and practices exist within the Guru–Shishya tradition, the same kind of success cannot be attained without the Guru–Shishya tradition.

Now, a new initiative has been taken: when

रों से कहा जाता है कि 'आप चुनिए, अगर कोई रुद्र वीणा का साधक है, सीखना चाहता है और लगन रखता है, तो हम [संस्थान] छात्रवृत्ति देने को तैयार हैं।' डॉ. किरण सेठ जी [आईआईटी-दिल्ली] आए, और मुझसे कई बार कहा कि बच्चे वज़ीफ़ा लें और दिल्ली में रहकर हमसे सीखें।

जब तक इस तरह की और व्यवस्थाएं नहीं होंगी, तब तक इस प्राचीन कला और इस गुरु-शिष्य परंपरा वाली विद्या में कामयाबी मिलना मुमकिन नहीं है।

आपने बताया कि जब आप छोटे थे, तो आपके पिताजी आपको साथ में सुलाकर रियाज़ करते थे, जिसका आप पर गहरा 'असर' हुआ। और अब, जैसा आपने बताया कि डा सेठ का 'सुझाव' है कि कोई नया शिष्य आए और आपके सानिध्य में सीखे, ताकि आप अपनी विद्या उसे 'सौंप' सकें। तो इन दोनों में अंतर क्या है? एक तरफ वो माहौल जो आपको बचपन से मिला, और दूसरी तरफ अब इस उम्र में शुरुआत करना—इन दोनों के परिणामों में क्या फ़र्क है?

ख़ानसाब: अभी तक यह क्यों नहीं हो पाया, इसमें बहुत सी दिक्कतें और परेशानियाँ हैं। इसमें दो अलग-अलग बातें भी हैं- एक बात यह है कि दिल्ली में अगर कोई अकेला आए भी, तो उसका वज़ीफ़ा या छात्रवृत्ति इतनी तो होनी चाहिए कि उसका दिल्ली में गुज़ारा हो सके। मंत्रालय की तरफ से एक-दो शिष्य मेरे पास आए भी थे, लेकिन दिल्ली में रह नहीं सके। एक-आध को तो मैंने अपने पास ही रख लिया। जैसे एक लड़का जोरहाट, असम से आया था। उसे २००० रुपये की छात्रवृत्ति मिलती थी, जो दो साल के लिए तय हुई थी। अब कहीं दूर से ट्रेन का टिकट लेकर आने-जाने में ही उसके १०००-१२०० रुपये खर्च हो जाते थे। वह एक-दो बार तो आया, फिर आ भी नहीं सका।

big conferences take place, I, and many other musicians, are told, "You choose. If there is any practitioner of the Rudra Veena who wants to learn and has dedication, then we, as an institution, are ready to give a scholarship." Dr. Kiran Seth ji came to IIT Delhi, and told me many times that children should take a stipend and, staying in Delhi, learn from us.

Until more arrangements of this kind exist, it is not possible to succeed in this ancient art and in this knowledge sustained by the Guru–Shishya tradition.

You said that when you were small, your father used to practice with you by having you sleep alongside him, and that it had a profound "impact" on you. And now, as you said, Dr. Seth's suggestion is that a new disciple should come and learn in your presence, so that you can *hand over* your knowledge to him. So what is the difference between these two? On one side is the environment you received from childhood, and on the other side is the beginning now at this age. What difference is there in the outcomes of the two?

Khansaab: So far, this has not happened because there are many difficulties and problems involved. There are two separate issues here. One issue is that if someone comes alone to Delhi, their stipend or scholarship should at least be enough to cover their living expenses. A few disciples came to me from the ministry, but they could not stay in Delhi. I kept one or two with me. For instance, a boy came

"यह केवल साल-दो साल की बात नहीं है"

बाहर के लोगों के लिए यहाँ रहना और आना जाना बहुत मुश्किल है, तो केवल एक वज़ीफ़े से यह कैसे संभव होगा? व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए कि कोई यहाँ दिल्ली में रहकर रोज़ रियाज़ कर सके। कम से कम ५-१० साल का वक़्त तो चाहिए। यह केवल साल-दो साल की बात नहीं है। मंत्रालय ने साल-दो साल के लिए वज़ीफ़ा दे भी दिया, तो उससे ज़्यादा कुछ हासिल नहीं हो पाएगा।

"दूसरी बात यह है कि शिष्य का चुनाव तो मैं ही करूँगा। मान लीजिए अगर चार लोग आए हैं, पर उनमें से परखना और चुनना तो मुझे ही है। "

दूसरी बात यह है कि शिष्य का चुनाव तो मैं ही करूँगा। मान लीजिए अगर चार लोग आए हैं, पर उनमें से परखना और चुनना तो मुझे ही है। आज से तकरीबन ५-६ साल पहले मणिपाल में स्पिक मैके का वार्षिक सम्मेलन हुआ था, शायद मई या जून में। वहाँ ऐलान किया गया था कि बैंगलोर के पास किसी गाँव की एक लड़की है जो रुद्र वीणा बजाती है। वह अपनी एक सहेली और रुद्र वीणा के साथ वहाँ मुझसे मिलने आई। वह ४-५ दिन वहाँ रही, और मुझसे थोड़ी तालीम भी ली। फिर वह वहाँ से चली गई। मैंने उससे कहा- 'यह तो ठीक है कि तुम यहाँ आ गई और एक-आध चीज़ सीख ली, लेकिन सीखने के लिए तो रोज़ रियाज़ करना पड़ता है। मैं तो रोज़ तुम्हारे पास नहीं आ सकता।' अब चूँकि वह शादीशुदा है, इसलिए उसका यहाँ आना मुमकिन नहीं।
पिछले साल यह पता चला कि मेरी एक शागिर्द ने ग्वालियर में आकर प्रस्तुति दी है। बाद में मालूम हुआ कि वे खुद ही वहाँ आई हुई थीं। वैसे मेरी

from Jorhat, Assam. He used to receive a 2000-rupee scholarship, fixed for two years. Now, just in buying a train ticket from far away and traveling back and forth, he would spend 1000–1200 rupees. He came once or twice, and then he could not come again.

For outsiders, living here and traveling back and forth is very difficult, so how will this be possible with only a stipend? The arrangement should be such that someone can stay here in Delhi and practice every day. At least 5–10 years of time is needed. This is not merely a matter of a few years. Even if the ministry gives a stipend for one or two years, nothing more than that will be achieved.

The second issue is that I will select the disciple. Suppose four people come, but it is for me to assess and choose among them.

About 5–6 years ago, SPIC MACAY's annual convention took place in Manipal, perhaps in May or June. It was announced that there is a girl in a village near Bangalore who plays the Rudra Veena. She came there to meet me, along with a friend and her Rudra Veena. She stayed there for 4–5 days and also received some training from me. Then she left from there. I told her, "It is fine that you came here and learned one or two things, but to learn, you must practice every day. I cannot come to you every day." Now, since she is married, it is not possible for her to come here. Last year, it was reported that one of my shāgirds came to Gwalior and gave a performance. Later,

एक और महिला शागिर्द हैं–ज्योति हेगड़े–जिन्होंने मुझसे ध्रुपद में तालीम ली।

ज़की हैदर- साहब, इनका सवाल दरअसल यह है कि वह उस अंतर को समझना चाहती हैं। आपको तो बचपन से वह माहौल मिला, आप उसी वातावरण में रहे। लेकिन अगर कोई इस उम्र में आकर सीखेगा, तो उसके भीतर वह 'आत्मा' या संगीत की वह भावना कैसे पैदा होगी? आपको तो बचपन से साथ रहने का लाभ मिला।

हाँ, यह एक महत्वपूर्ण पहलू है और इसे समझना ज़रूरी है। देखिए, मुझे जो मौका मिला यह तो मेरी क़िस्मत की बात है। लेकिन आज के दौर में हमें भी कुछ समझौता करना पड़ेगा। कुछ ऐसा समझौता जो शायद हमारे गुरुजन नहीं कर सकते थे।

लेकिन समझौते का अर्थ हर प्रथा बदलना नहीं है। आज के हालातों को देखते हुए हमें कुछ हद तक नरमी भी बरतनी ही होगी। शागिर्दों को रियाज़ की आदत समझानी पड़ेगी ताकि वे अपने घर जाकर रियाज़ करने लगें। कम से कम इतना तो हो कि २ से ५ साल में वे कुछ हद तक कामयाब हो जाएँ। अब मैं वह पुराना तरीका नहीं अपना सकता।

लेकिन मैं एक दूसरा पहलू भी ज़रूर मानूँगा। उम्र का तक़ाज़ा अपनी जगह है, और बचपन से गुरु के साथ रहने का अपना एक अलग फ़ायदा है। मगर अगर कोई किसी और उम्र में सीखने आता है, तो पहली बात यह है कि उसकी आत्मा वैसी होती है। उसका वह शौक उसे यहाँ लाता है। यह भी कुदरत की ही देन है कि उसने संगीत को समझा और पसंद किया, तभी तो वह आया। तो कहीं न कहीं संगीत उसकी आत्मा में बस ही जाता है।

गुरु के सानिध्य में रहकर, चीज़ों को समझकर, उसमें जो निखार आता है, जिसे हम चार चाँद लगाना भी कहते हैं, वह अपने-आप और मज़ीद बढ़ता चला जाता है। संगीत कहीं न कहीं उसकी

it was learned that she had come there on her own. Also, I have another female student, Jyoti Hegde, who learned from me in Dhrupad.

Zaki Haider: Sahab, their question is to understand that difference. You had an environment from childhood, and you remained in that atmosphere. But if someone comes and learns at this [later] age, then how will that "ātmā," or that feeling of music, arise within them? You had the benefit of living together from childhood.

Yes, this is an important aspect, and it is necessary to understand it. Look, the opportunity I got was a matter of my fate. But in today's time, we too will have to make some compromise, something that perhaps our gurus could not have made.

But compromise does not mean changing every practice. Given today's circumstances, we will need to be somewhat flexible. We will have to teach the disciples the habit of riyāz so they can go home and begin practicing. At the very least, it should be such that in 2 to 5 years, they become successful to some extent. Now I cannot adopt that old method.

But I will also certainly acknowledge another aspect. The demands of age have their place, and living with the guru from childhood has its own distinct advantage. Yet if someone comes to learn at another age, the first thing is that their ātmā is such. That passion brings them here. It is also a gift of nature that they understood and liked music; only then did they come. So, somewhere or other, music already

आत्मा में भी उतरा हुआ होता है, तभी तो सीखने की भावना इतनी प्रबल होती है। चाहे वह किसी भी उम्र में आए, संगीत उसकी आत्मा में होगा ही। यहाँ उम्र की कोई क़ैद नहीं है।

मगर अब गुरु को भी थोड़ा समझौता करना पड़ेगा। कम वक़्त में कुछ ऐसे रास्ते और तरीके निकालने होंगे कि शिष्य अपनी पढ़ाई या काम भी करता रहे, और साथ ही संगीत की शिक्षा भी चलती रहे। सबसे बड़ी बात यह है कि अगर आपने इस कला [संगीत] में स्नातकोत्तर किया है, तो कम से कम यह तसल्ली रहती है कि कहीं नौकरी मिल जाएगी। आपने अभी वीणा में कोई स्नातकोत्तर की उपाधि तो रखी नहीं है, मगर इतना तो होना चाहिए कि आप किसी इदारे, विद्यालय, विश्वविद्यालय या अकादमी में कुछ कक्षाएँ ले सको, सिखा सको, या थोड़ी बहुत प्रस्तुति दे सको। पुराने और आज के गुरु में यही फ़र्क है कि हमें थोड़ा समझौता करना पड़ेगा।

हाँ, लेकिन समझौते का मतलब यह हरगिज़ नहीं कि हम अपनी शैली बदल दें। मेरे पास बहुत से ऐसे विदेशी छात्र आए जो मेरी बैठक में बैठ ही नहीं सकते थे। वे बाहर से आए थे और बोले, 'साहब, हम इस तरह नहीं बैठ सकते'। तो मैंने कहा, फिर आप मुझसे सीख भी नहीं सकते। यहाँ मैंने कोई समझौता नहीं किया। न ही मैं यह समझौता करूँगा कि कोई कहे, 'साहब, मुझे इस पर कोई धुन बता दीजिए, कोई भजन या गीत सिखा दीजिए'। नहीं, यह भी नहीं होगा। यह हो सकता है कि मैं कम से कम समय में तुम्हें ज़्यादा से ज़्यादा तालीम दे दूँ, इस तरह तैयार करूँ कि तुम जल्द ही किसी क़ाबिल हो सको। लेकिन यह सीखने वाले पर भी निर्भर करता है कि वह उसे कितनी जल्दी ग्रहण करता है, कितनी जल्दी उसे अपनी आत्मा में उतार पाता है। क्योंकि जो आप आत्मा से जुड़ा सवाल कर रही हैं, वह कोई किसी को घोल कर नहीं पिला सकता। दिमागी तौर पर समझना एक चीज़ है, और रूहानी तौर पर उसे महसूस करना दूसरी चीज़। यह पूरी तरह शिष्य की रूह पर निर्भर करता है कि वह उसे कैसे अपनाता है।

settles into their ātmā.

By living in the guru's presence, by understanding things, the refinement that comes, which we also call "to add to the charm", goes on increasing by itself, and even further. Somewhere or other, music has already descended into their ātmā too; only then is the urge to learn so strong. Whatever age they come at, music will be in their ātmā. There is no age restriction here.

But now the guru, too, will have to make a little compromise. In less time, some such paths and methods will have to be found so that the disciple can continue their studies or work, and at the same time, the teaching of music continues. The biggest point is that if you have completed a graduate degree in this art (music), at least you have the reassurance that you will get a job somewhere. You do not yet hold any graduate degree in veena, but you should at least be able to take a few classes, teach, or give a short performance at an institution, school, university, or academy. This is the difference between the older guru and today's guru: we will have to make a little compromise.

Yes, but compromise absolutely does not mean that we change our style. Many foreign students came to me who could not even sit in my baithak. They came from outside and said, "Sahab, we cannot sit like this". So I said, then you cannot learn from me either. Here, I made no compromise. Nor will I make this compromise, that someone says, "Sahab, please tell me some tune on this, teach me some bha-

हाँ, संगीत के घराने में जन्म लेने का फ़ायदा ज़रूर होता है, क्योंकि बच्चे को शुरू से वैसा माहौल मिलता है। लेकिन अब यह ज़रूरी नहीं कि उस्ताद सिर्फ़ अपने बेटे या रिश्तेदारों को ही सिखाएँ। अगर कोई बाहर का व्यक्ति आता है, और उसमें सीखने की ललक और कुव्वत है, और फिर वही आत्मा वाली बात आ गई, तो वह सिखा सकता है। बहुतों ने किया भी है। लेकिन अंततः यह उसी पर निर्भर करता है, क्योंकि यह हुनर कोई किसी को तश्तरी में रखकर नहीं दे सकता है। आज के दौर में लोगों के पास वक़्त की सबसे बड़ी किल्लत है। लेकिन अगर कोई सीखना चाहता है, तो सीखने वाले को कुर्बानी तो देनी पड़ेगी, समय की भी और हर लिहाज़ से भी।

आज के दौर में सबसे बड़ा एतराज़ यह है कि लोग कहते हैं, 'साहब, आजकल के गुरु सिखाते नहीं हैं, सिवाय अपनी औलाद के। अपने बेटे के अलावा ये किसी को इल्म नहीं देते।' यह बात बिल्कुल गलत बात है। लेकिन आप में भी तो कम से कम पात्रता होनी चाहिए।

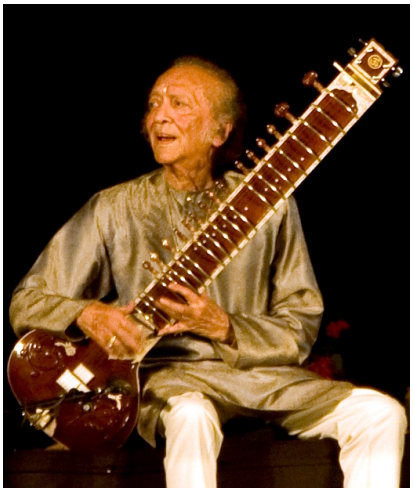

Pandit Ravi Shankar in Delhi in 2009
Wikipedia Commons

मैं आपको पंडित रवि शंकर जी की इतनी बड़ी

jan or song". No, that will not happen either. It may be that, in the least amount of time, I can give you as much training as possible, and prepare you in such a way that you can become capable soon. But it also depends on the learner: how quickly they absorb it and how quickly they can bring it down into their ātmā. Because the question you are asking, connected with ātmā, no one can dissolve and pour into someone else. Understanding intellectually is one thing, and feeling it spiritually is another. This depends entirely on the disciple's rūh, on how they make it their own.

Yes, there is certainly an advantage in being born into a musical gharana, because the child gets that kind of environment from the very beginning. But now it is not necessary that an ustad should teach only his son or relatives. If an outsider comes, is eager to learn, and has the capacity to learn, and then that same ātmā-related matter comes up, he can be taught. Many people have done so as well. But in the end, it depends on the person himself, because this skill cannot be given to someone by placing it on a platter. In today's time, people have the greatest shortage of time. But if someone wants to learn, the learner will have to make sacrifices, including time, in every respect.

The biggest objection today is that people say, "Sahab, nowadays gurus do not teach, except their own children. Apart from their sons, they do not give knowledge to anyone". This is entirely wrong. But you must have at least some eligibility.

मिसाल देता हूँ। क्या उनके पिताजी सितार बजाते थे? नहीं, उनके बड़े भाई को नृत्य का शौक था, और खुद उन्होंने भी शुरू में थोड़ा नृत्य किया है। यह कम लोग जानते हैं। बाद में वे बाबा अलाउद्दीन खान साहब के पास गए और बाबा ने उन्हें तैयार किया। उनमें वह क़ाबिलियत थी, वह ज़हानत थी, तभी वे आज उस मक़ाम पर पहुँचे। बाबा ने जहाँ अपने बेटे उस्ताद अली अकबर खान साहब को तालीम दी, वहीं शागिर्द, रवि शंकर जी को भी उतना ही तैयार किया।

अब देखिए, एक जर्मन शिष्य हैं, कार्स्टन विके, जो पिछले दस साल से मेरे पास आ रहे हैं। उनका साज़ भी यहीं [रुद्र वीणा] है। उन्हें यहाँ एक नौकरी का प्रस्ताव मिला, और इत्तेफाक से वह नौकरी उन्हें मिल भी गई। उन्होंने वह नौकरी सिर्फ़ इसलिए ली ताकि वे यहाँ मेरे पास रह सकें। लेकिन वह नौकरी उन्हें रास नहीं आई। छह महीने या साल भर के बाद उन्होंने वह नौकरी, जो कंप्यूटर की अच्छी खासी तनख्वाह वाली नौकरी थी, छोड़ दी। उनका कहना था, जब मुझे साज़ बजाने का और गुरु के पास जाने का ही वक़्त नहीं मिल रहा, तो इस नौकरी का क्या फ़ायदा। उन्होंने तय किया कि, 'मैं बिना नौकरी के रह लूँगा, लेकिन संगीत से दूर नहीं रहूँगा'।

A very monumental example of this is Pandit Ravi Shankar ji. Did his father play the sitar? No. His elder brother was interested in dance, and he himself also did a little dancing at first. Few people know this. Later, he went to Baba Allauddin Khan Sahab, and Baba prepared him. He had that capability, that intelligence, and only then did he reach the position he holds today. Where Baba trained his son, Ustad Ali Akbar Khan Sahab, he also prepared his disciple, Ravi Shankar ji, just as much.

Now see, there is a German disciple, Carsten Wicke, who has been coming to me for the last ten years. His instrument here, too, is the same, the Rudra Veena. He received a job offer here, and by coincidence, he got it. He took that job only so that he could stay here with me. But that job did not suit him. After six months or a year, he left that fairly well-paid computer job. He said that when he does not have time to play the instrument and go to the guru, what is the use of this job? He decided, "I will live without a job, but I will not stay away from music."

"अगर कोई सीखना चाहता है, तो सीखने वाले को कुर्बानी तो देनी पड़ेगी, समय की भी और हर लिहाज़ से भी।"

Acknowledgments: We are deeply indebted to Ananya Chaturvedi, Taruna Kumari, and Raghav for entrusting Anveshanā with the privilege of sharing the voice and legacy of Ustad Asad Ali Khan. This offering would not have been possible without the steadfast support of C.S. Aravinda, whose help enabled us to obtain the recording and bring it to publication.

We hope this work carries the voice forward with the care it deserves.